International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(4): 73-75

International Journal of
Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(4): 73-75
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 10-04-2015
Accepted: 12-05-2015

प्रमिला विश्वास
संस्कृत विभाग (शोधच्छात्रा)
कुमॉऊ विश्वविद्यालय, नैनीताल

Correspondence
प्रमिला विश्वास
संस्कृत विभाग (शोधच्छात्रा)
कुमॉऊ विश्वविद्यालय, नैनीताल

गृहस्थ आश्रम व्यवस्था में नारी की भूमिका

प्रमिला विश्वास

भारतीय संस्कृति ने सम्पूर्ण जीवन को सौ वर्ष का मानकर 25–25 वर्षों के चार भागों में बाँट दिया हैं। उसमें दूसरी आश्रम व्यवस्था गृहस्थ आश्रम के नाम से जाना जाता है। गृहस्थ आश्रम मनुष्य जीवन का दूसरा भाग है।[1] गृहस्थाश्रम व्यक्ति के जीवन का वह भाग है जिस पर स्वयं उसकी, उसके परिवार, समाज और राष्ट्र की उन्नति निर्भर करती हैं। वैदिक कर्मकाण्ड का सबसे प्रमुख अंग ''यज्ञ'' है। यज्ञ के लिये वैवाहिक जीवन अर्थात् पत्नी का साथ बैठना अनिवार्य है। पत्नी बिना यज्ञ कृत्य अपूर्ण रहता था। हिन्दू समाज में विवाह का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह गृहस्थ जीवन का मूल है। **मनीषियों में गृहस्थ आश्रम को धुरी माना है, जिस पर सम्पूर्ण आश्रम व्यवस्था का अस्तित्व टिका हुआ है। मनु ने तो यहां तक कहा है कि जिस तरह वायु का आश्रय लेकर सब जीव–जन्तु जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय लेकर सभी आश्रम जीवन प्राप्त करते हैं। जैसे सभी छोटी–बड़ी नदियां अन्त में समुद्र में ही स्थायी रूप से विश्राम पाती हैं उसी तरह सब आश्रमों के व्यक्ति गृहस्थ के हाथों सुरक्षा एवं स्थायित्व प्राप्त करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था– ''गृहस्थ सारे समाज की नींव सादृश्य है। सम्पूर्ण समाज उसी से साधन प्राप्त करता है।**[2]

लोक परलोक के मानवीय जीवन को सौष्ठव प्रदान करने के लिये विचारशील ऋषियों के कल्पनाशील मस्तिष्क ने गृहस्थ का वैवाहिक जीवन को ही गृहस्थाश्रम का प्राण कहा गया है।[3] महाभारत में युधिष्ठर को नीति का उपदेश देते हुये भीष्म ने स्पष्ट प्रतिपादन किया है कि दाम्पत्य जीवन निर्वाह किये बिना मनुष्य इस संसार में धर्म संचय नहीं कर सकता है क्योंकि धर्म, अर्थ और काम के अवसरों पर पत्नी ही मुख्य सहायिका होकर पुरूषार्थों की सिद्धि हेतु गृहस्थ के विशाल–विस्तृत और विविधता वाले कार्य को करती है और जीवन प्रवाह को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है।[4]

महर्षि भृगु, भारद्वाज ऋषि से गृहस्थाश्रम को जीवन का इसीलिये अनिवार्यतः द्वितीय भाग बताते हुये महाभारत में यह प्रतिपादन करते हैं कि गुरूकुल के परिवेश से मुक्त सदाचार सम्पन्न ब्रह्मचारी के लिये उचित है कि वह धार्मिक सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने तथा आत्मीय भावनात्मक सम्बन्ध की श्रृंखला को जोड़ने हेतु विवाह कर गृहस्थ धर्म सेवन करे।[5] ताकि इसके माध्यम से धर्म, अर्थ और काम इन तीन गुणों को प्राप्त कर सृष्टा की आज्ञा का पालन करते हुये सृजन में सहायक होकर वह अन्त में जीवन के लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त कर सके। पुरूष स्त्री से विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता तथा धर्मानुसार सम्पूर्ण जीवन के कार्यों को सम्पादित करता है।[6]

बोधगम्य धर्म सूत्र में गृहस्थाश्रम को अनेक प्रयोजनों को पूरा करने वाला सर्वोच्च आश्रम माना है। इसके सुखोपभोग के साथ–साथ धर्म का भी समन्वय होने से महर्षि गौतम ने गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों का मूल कहा है। जिन लोगों का यह कथन है कि गृहस्थ जीवन जंजाल है, व्यर्थ है, इसमें रहकर ईश्वर उपासना का लाभ नहीं उठाया जा सकता।

उन्हें जानना चाहिये कि महर्षि कण्व जमदग्नि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम आदि अनेक ऋषि गृहस्थ ही थे और गृहस्थ में रहकर ही उन्होंने उच्च तत्वों की शोध की थी। वस्तुतः मनुष्य के विकास में परिवार पहली और सबसे महत्वपूर्ण इकाई हैं। अनेक कष्ट और कठिनाइयां भी गृहस्थ जीवन में हंसी–खुशी के साथ काट ली जाती हैं। दूसरे तीनों आश्रमों के संचालन की व्यवस्था भी इसी से पूरी होती है।[7]

महर्षि व्यास के शब्दों में ''*गृहस्थ्येव हि धर्माणि सर्वेषां मूलमुच्यते*'' गृहस्थाश्रम ही सर्व धर्मो का आधार है। ***''धन्योगृहस्थाश्रमः''*** चारो आश्रमों में गृहस्थाश्रम धन्य है। जिस तरह समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं, उसी तरह सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित है।[8]

यह मानव जीवन का वह स्वर्णिम काल है, जिसमें वह धर्म, अर्थ और काम इन पुरूषार्थों का यथोचित सेवन कर सकता हैं। आचार्य मनु और याज्ञवल्क्य ने भी मनुष्य के लिये विधान किया कि गृहस्थाश्रम में विधि–पूर्वक प्रवेश करें और शुभ लक्षण सम्पन्न स्त्री से विवाह करें।[9] यही वह समय है जब वह दम्पत्ति समेत अपने त्रिऋण, पंचयज्ञों को पूरा करते हैं। गृहस्थ जीवन में नारी का विशेष स्थान है।

वैयाकरण पाणिनी ने पत्नी शब्द की व्युत्पत्ति की है जो पति के साथ यज्ञ में बैठे वही पत्नी है।[10]
ब्रह्मा के पश्चात् इस भूतल पर मानव को अवतरित करने वाली नारी का स्थान सर्वोपरि है। हमारे ग्रन्थों में यज्ञ, श्राद्ध, तर्पण, वेदशास्त्र, श्रवण, सन्तोनोत्पादन, त्रिवर्ग सेवन आदि बहुत से कर्तव्य गृहस्थाश्रम से सम्बन्धित बताये गये हैं और यह सब स्त्री के अभाव में नहीं हो सकता हैं।
वेदों में स्त्री को ब्रह्मा की उपाधि दी गयी है। ''***स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।***'' तै0ब्रा0 का वचन– ''***अर्थो हि वा एष आत्मनो यत् जाया।***'' [11] स्त्रियों की योग्यता व आवश्यकता प्रकट करता हैं। महाकवि कालिदास ने भी वशिष्ठ तथा अरून्धती को आदर्श दम्पत्ति के रूप में प्रस्तुत करते हुये स्पष्ट किया है कि धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन स्त्री के बिना पूरा नहीं हो सकता है–

तद्दर्शनादभूच्छंभोर्भूयान्दारार्थमादरः।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्।। [12]

अनेक श्रोत सूत्रों में पत्नी से यज्ञ के मन्त्र पढ़ाये जाने का भी उल्लेख किया गया है।[13] यज्ञ के अनेक कार्य पत्नी सम्पादित करती थी। वह पति का आधा अंग होती है। उसकी अनुपस्थिति में पति यज्ञ नहीं कर सकता था।[14] तै0ब्रा0 में कहा गया है कि पत्नी के बिना पति धार्मिक कृत्य में पंगु था। उसे यज्ञ करने का अधिकार नहीं था[15] याज्ञवलक्य ने एक पत्नी के मर जाने पर यज्ञ कार्य के लिये तुरन्त दूसरा विवाह करने का विधान किया।[16] श्रुति यह कहती है कि आधे देह में पति और आधे देह में पत्नी हुयी। जब तक पुरूष स्त्री से विवाह नहीं करता तब तक वह आधा ही होता है।[17] शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि पत्नी के बिना पुरूष स्वर्ग नहीं जा सकता, इसीलिये स्वर्ग आदि की कामना से किये जाने वाले यज्ञ में पत्नी की उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक समझी जाती थी।[18] **रामायण काल में राम अश्वमेघ यज्ञ करने में पूर्व सीता को निर्वासित कर चुके थे, परन्तु पत्नी के बिना यज्ञ करना सम्भव न होने के कारण ही राम ने यज्ञ स्थल में सीता की स्वर्ण प्रतिमा स्थापित की।**[19]
हिन्दू धर्मशास्त्रों में सती नारी की बड़ी महिमा गायी है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का वचन है – '' पृथ्वी पर जितने तीर्थ है, वे सभी सती साध्वी स्त्री के चरणों में निवास करते सम्पूर्ण देवताओं और मुनियों का तेज भी सती साध्वी स्त्रियों में स्वभावतः रहता है। सती नारियों की चरण रजसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाता है।[20] सदाचारिणी पत्नी का त्याग करके पुरूष धर्म से पतित होता है।[21] कहा जाता है कि जो पत्नी से रहित है, उसका घर जंगल के समान है। **देवत्व के प्रतीकों में प्रथम स्थान नारी का तथा दूसरा नर का है, जैसे लक्ष्मी–नारायण, राधेश्याम, सीता–राम आदि** जैसे देव युग्मों में प्रथम नारी का और बाद में नर का उल्लेख होता है। नारी पुरूष की पूर्णता और सृष्टि की मूल है, इसके अभाव में मानवता की कल्पना करना भी असम्भव है।
ऋग्वैदिक काल में पति के साथ पत्नी गृहस्थी की संयुक्त स्वामिनी होती थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल के विवाह सूक्त में परिवार में वधू के स्थान का सुन्दर निर्देश दिया है। विवाह की विधि पूर्ण होने पर पुरोहित नव वधू को आर्शीवाद देता है कि वह सास, ससुर, ननद आदि सबकी साम्राज्ञी हो।[22] पुरूष यदि घर से बाहर के कार्यों को सुचारूता एवं उन्नति का कर्तव्य वहन करता है तो स्त्री सेवा, सुश्रुषा, स्नेह आदि के सम्बलपूर्वक घर के विभिन्न कष्ट साध्य दायित्वों का निर्वाह करती हुयी अपनी चरम उपयोगिता को सार्थक रूप में सिद्ध करती हैं तथा स्त्री अपने विविध रूपों में पुत्री, भगिनी, पत्नी, माता आदि का पालन करती हैं। नारी मात्र पत्नी का ही कर्तव्य पालन नहीं करती अपितु उनका मातृ रूप स्नेह और ममता से अप्लावित हुआ करती हैं। वे बच्चों को प्यार करती, उनका पालन–पोषण और देखभाल करती तथा उनको अच्छी शिक्षा भी देती थी। **माता के रूप को मनु स्मृति में इस प्रकार कहा गया है – दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता और हजार पिताओं की अपेक्षा माता का गौरव अधिक होता है।**[23]
ऋग्वेद (2/39/2) के मंत्र की एक पंक्ति ''***दम्पत्ति क्रतुविद***'' से यह प्रमाणित होता है कि पति और पत्नी दोनों मिलकर घर की अग्नि को प्रज्वल्लित किया करते थे।[24] ऋषि विश्वामित्र ने पत्नी को पारिवारिक जीवन का स्त्रोत माना है।[25] ऋग्वेद में पत्नी को आभूषण माना गया आज भी समाज में कहा जाता है कि पत्नी ही घर की रौनक है।[26] इससे यह स्पष्ट होता है कि नारी का समाज में बड़ा ही उच्च स्थान है। वह अपने कर्तव्यों का भली–भांति पालन करती हैं और पति के कार्यों में भाग लेती थी। महाभारत में गृहस्थाश्रम में नारी के प्रति विशेष रूप से कहा है कि–

न गृहं इत्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
नाहि नारी बिना गृहस्थाश्रमों शक्नोति।''
(महाभारत)

भारतीय संस्कृति का प्रधान केन्द्रीय तत्व है– ''भाव संवेदना''। इस गुण की प्रचुरता जिसमें है, वह नारी शक्ति देव संस्कृति के विकास क्रम में एक धुरी की भूमिका निभाती आयी है। प्राणियों का अस्तित्व ही यदि इस धरती पर है तो इसके मूल में मातृशक्ति की प्राणियों पर की गयी अनुकम्पा है। **वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों मं स्त्री एवं पुरूष दोनों नदी के दो तटों की भांति सहयुक्त है। दोनों के बीच में जीवन की धारा प्रवाहित होती है।**[27] मनु ने तो स्पष्ट कहा है कि अकेले पुरूष का कोई अस्तित्व नहीं है, वह अधूरा है। स्त्री, स्नेह और सन्तान इन तीनों को मिलाकर ही पुरूष पूर्ण है।[28] आचार्य मनु का यह भी मानना है कि पारिवारिक समारोहों एवं उत्सवों के अवसर पर स्त्रियों को वस्त्राभूषणों तथा भोजन देकर विशेष रूप से सन्तुष्ट करना चाहिये।[29]
वंश को उजागर करने के लिये ही नारियां होती है, उसके लिये वह कितना त्याग करती है, उसका उच्च रूप सीता में देखा जाता है। यद्यपि लोकापवाद के कारण राम ने उन्हें प्रसवकाल के समीप होने पर भी वन में छोड़ दिया। उस समय भी सीता पृथ्वीतल में जा सकती थी, पर उन्होंने लव और कुश को जन्म देकर राम के अंश को उजागर किया। **ऐतरयोपनिषद् में स्पष्ट है ''नारी हमारा पालन करती है, अतः उसका पालन करना हमारा कर्तव्य है।''**
पुराणों में भी पति से अधिक पत्नी का महत्व बताया गया है। पद्यम पुराण में कहा गया है कि पुण्यमयी पत्नी के सहयोग से गृहस्थ धर्म का पालन अच्छे ढंग से होता है तथा मानव जीवन के इस भूमण्डल में गृहस्थ धर्म से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है।[30] उपनिषद् में भी स्त्री और पुरूष का सम्बन्ध इस प्रकार से बताया गया है कि **पत्नी–पति का आधा अंग है, जैसे दो दाल वाले बीज की एक दाल।**[31]
प्राचीन काल से ही पत्नी को पति की अर्द्धागिंनी मित्र त्रिवर्ण की मूल और बन्धु माना गया है।

निष्कर्ष– प्रस्तुत शोध लेख से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शनों का मुख्य प्रयोजन मोक्ष है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए पुरूष को निवृत्ति रूपी धर्म से गुजरना पड़ता है, जिसकी प्राप्ति परम्परा या नारियों के बिना सम्भव नहीं है। दर्शन के अनुसार स्त्री एवं पुरूष शब्द के संयोग से होने वाली मानवों की सृष्टि में पुरूषमात्र दृष्टा है तथा मनुष्यों की सृष्टि में सबसे बड़ा योगदान नारी का ही है।
अतः मानव जीवन को सुव्यवस्थित ढंग से संचालन के लिये आश्रम व्यवस्था की आवश्यकता है, जिसे मनिषियों ने चार भागों में बांटा है। इन चारों आश्रमों में दूसरा भाग गृहस्थ आश्रम है, जो चारों आश्रमों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। जिसका आधार स्तम्भ नारी है। इस आश्रम में आने पर ही व्यक्ति अपने लक्ष्य तथा मोक्ष तक पहुंचता है क्योंकि इस आश्रम से वह अपने पितृ ऋण, देव ऋण तथा पंचयज्ञ आदि को पूरा कर मोक्ष प्राप्त करता है। इस आश्रम का महत्वपूर्ण अंग स्त्री और पुरूष है। पुरूष इस आश्रम को अकेले पूरा नहीं कर सकता, उसे स्त्री की आवश्यकता पड़ती है। इस आश्रम से ज्ञात होता है कि पुरूष का जीवन स्त्री के बिना अन्धेरी रात की तरह है। वह स्त्री के बिना अपूर्ण है। अतः गृहस्थ जीवन में पुरूष से अधिक नारी का महत्व है, क्योंकि नारी के बिना वह किसी

कार्य व यज्ञ को पुरूष सम्पादित नहीं कर सकता। स्त्री और पुरूष एक–दूसरे के पूरक है, एक के बिना दूसरे का कोई औचित्य नहीं है। जैसे एक रथ में दो पहिये होते हैं, एक पहिया न हो तो रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार स्त्री बिना पुरूष आगे नहीं बढ़ सकता। नारी केवल गृहस्थ जीवन में पुरूष का साथ ही नहीं देती अपितु विश्व की समस्त सभ्यताओं में समग्र क्षेत्रों में विकास की धारा में नारी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

सन्दर्भ सूची

1. मनुस्मृति 4/1 (द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्)
2. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व/पं0 श्री राम शर्मा/पेज नं0–4.38
3. महाभारत/शान्ति पर्व 144/5 उत्तरार्द्ध
4. महाभारत/शान्ति पर्व 114/16 एवं 13 का पूर्वार्द्ध
5. महाभारत/शान्ति पर्व 191/10
6. महाभारत/शान्ति पर्व 191/17
7. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व/पं0 श्री राम शर्मा/पेज नं0–4.43
8. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व/पं0 श्री राम शर्मा/पेज नं0–4.78
9. भारतीय संस्कृति/डॉ0 किरण टण्डन/पेज नं0–245, 246
10. अष्टाध्यायी–4/1/133 (पत्थुर्नो यज्ञसंयोगे)
11. तै0ब्रा0–3,3,3,5
12. कुमार सम्भव–6.13
13. आश्व श्रौ0सू0–1.11
14. तै0ब्रा0–22, 2.6, 3.3.3 शा0ब्रा0–5.2.1.10
15. तै0ब्रा0–2,2,2,6 (अयज्ञो वा एक योऽयपत्नीक)
16. याज्ञवलक्य स्मृति–1/89
17. व्यास स्मृति–2/13
18. शत0ब्रा0–5.2.1.10
19. गोभिल स्मृति–3/10
20. ब्रह्मवैवर्त पुराण
21. व्यास 2/47 (सद्वृत्तचरिणी पत्नी त्यक्त्वा पतति धर्मतः)
22. ऋग्वेद 10/85/46
23. मनुस्मृति 2/145
24. शास्त्री शकुन्तला राव–विमेन इन द वैदिक एज पृष्ठ संख्या–18
25. ऋग्वेद–3.53.4
26. ऋग्वेद–1.6.6.3
27. भारतीय संस्कृति/डॉ0 प्रति प्रभा गोयल/पेज नं0–125
28. महाभारत/आदि पर्व/74,40
29. मनुस्मृति 3.59
30. पद्यम् पुराण/भूमिखण्ड अ0–59
31. वृ0उप0–1.4.3